सुख-शान्ति की प्राप्ति का उपाय : सहज राजयोग

ब्रह्माकुमारी सुनीता बहन,

ब्रह्माकुमारी ई० विश्वविद्यालय केन्द्र, रीवाँ, म० प्र०

प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में स्थायी सुख-शान्ति चाहता है। इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिये मानव सारे यत्न करता है। क्या मनुष्य संसार के विषयों और पदार्थों को प्राप्त कर लेने पर स्थायी सुखशान्ति प्राप्त कर सकता है ? मुझे लगता है नहीं, क्योंकि सुख पदार्थों में नहीं है, वह तो मन की एकाग्रता द्वारा स्वरूप-स्थिति में है। हम देखते हैं कि यदि किसी मनुष्य के सामने सुस्वादु भोजन रखा हो और उसका मन अशान्त हो, तो वह उसे नहीं रुचता। साथ ही, पदार्थों को भोगते-भोगते मनुष्य स्वयं भोगा जाता है और अन्त में भोग-साधन इन्द्रियाँ भी शिथिल हो जाती है, शक्ति क्षीण हो जाती हैं, तन निर्बल हो जाता है और मनुष्य शारीरिक जर्जरता मोल ले लेता है। एक ही पदार्थ कुछ को प्रिय और कुछ को अप्रिय क्यों लगता है ? इससे विदित होता है कि सुख विषयों में नहीं, वह तो मनुष्य के अपने मन पर ही निर्भर करता है।

संसार के पदार्थ परिवर्तनशील हैं। उनकी अवस्थायें बदलती रहती हैं। जो स्वयं क्षणभंगुर हो, वह स्थायी सुख-शान्ति कैसे दे सकता है ? विषयों को प्राप्त करने, उनका संग्रह करने, उन्हें सेवन योग्य बनाने और फिर उन्हें भोगने में ही मनुष्य का सारा जीवन खप जाता है। इस पर भी यदि पूर्व कर्मों के उदय से यह विषय छिन जावे, तो मनुष्य के लिये यह दारुण दुःख का कारण बन जाता है।

इससे यह अभिप्राय नहीं लेना चाहिये कि हम विषयों का संग्रह और उपभोग छोड़ दें। सजीव शरीर के लिये भोजन, वस्त्र व स्थान आदि तो अनिवार्य ही होते हैं। यदि ये प्राप्त न हों, तो मनुष्य का जीवन नहीं चल सकता और उसका मन विक्षुब्ध रहता है। अकर्मण्यता तथा आलस्य—दोनों ही विकार हैं। मेरा अर्थ यही है कि ये विषय सर्वांगीण स्थायी सुख शान्ति के स्रोत नहीं हैं। सुख केवल धन, उत्पादन और पदार्थों की उपलब्धि का ही नाम नहीं है, उसके लिये उत्तम स्वास्थ्य, मन की शान्ति तथा मित्रों, सम्बन्धियों एवं पड़ोस से अच्छे सम्बन्ध भी आवश्यक हैं। यातायात, मनोरंजन, ज्ञानवर्धन एवं वैज्ञानिक प्रगति ने हमारे भौतिक सुख में पर्याप्त वृद्धि की है।

विकर्मों को दग्ध करने, कर्मों को श्रेष्ठ करने तथा संस्कार शुद्ध करने का उपाय : योग

उपरोक्त अनेकविध सुख हमारे कर्मों पर ही निर्भर हैं। संसार में सभी लोग मानते हैं कि जैसा कर्म वैसा फल। यह कर्म-सिद्धान्त नास्तिकों को भी मानना चाहिये। आज का वैज्ञानिक भी क्रिया-प्रतिक्रिया या कार्य कारणवाद को मानता है। कर्म सिद्धान्त इसी नियम का आध्यात्मिक पक्ष है। कर्म अविनाशी है, मनुष्य को अपने किये का फल अवश्य भोगना पड़ता है। साधु हो या महात्मा, दुष्ट हो या पापात्मा, कर्म-फल किसी को नहीं छोड़ता। मनुष्य को चर्म चक्षुओं से दिखाई दे या न दे, परन्तु प्रत्येक के साथ न्याय होता है। देर है, पर अन्धेर नहीं। दुःख देने वाला व्यक्ति यदि इस जन्म में नहीं, तो अगले जन्म में दुःख अवश्य पाता है। विकार और विकर्म, संस्कार और संचित कर्म ही दुःखों का कारण है। इनका मूल मन में उगता है और पलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन को निर्मल बनाने, निर्विकार करने तथा विकारों को निर्बीज करने के उपाय का नाम ही योग है। योग ऐसी सूक्ष्मतम अग्नि है जिससे मनुष्य के विकर्म दग्ध होते हैं। योग संस्कारों के परिवर्तन का भी एक अमोघ उपाय है। पुरानी आदतें छोड़ने के लिये योग साधन से ही आध्यात्मिक शक्ति मिलती है और मनोबल मिलता है। आत्मशक्ति द्वारा शान्ति और आनन्द का ऐसा फुब्बारा-सा मनुष्य के मन पर पड़ता है जो उसका सारा मैल धो डालता है और चाँदनी के समान उसे शीतल और रसमय बना देता है। इस आनन्द की विशेष अनुभूति का ही नाम योग है। योग एक उत्तम विज्ञान है जो सभी प्रकार के सुख सहज एवं निःशुल्क ही प्रदान करता है।

योग के प्रकार और लक्षण

आनन्ददायी योग विद्या के लिये भारत प्राचीन काल से ही सुज्ञात है। आधुनिक जीवन में योग की सर्वाधिक आवश्यकता है क्योंकि मानव विविध प्रकार की विषमता, अनियमितता तथा अनुपयुक्तता के वातावरण में रह कर मानसिक तनावों से घुट रहा है। ये तनाव व्यावसायिक, साझेदारी, सेवावृत्ति, औद्योगिक, आर्थिक, उपभोक्ता—उत्पादक, पड़ोसी–विदेशी, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, भाषा, जाति आदि के समान विविध सम्बन्धों में समुचित सामंजस्य के अभाव में होते हैं। अज्ञान, अपवित्र संस्कार, पुरुषार्थ-विघ्न एवं पूर्वकृत अशुभ कर्म इन तनावों को और भी दुखमय बनाते हैं। इस तनाव से मुक्ति और आनन्द प्राप्ति ही योग का प्रमुख लक्ष्य है। इस दृष्टि से योग एक मनो-वैज्ञानिक प्रक्रिया है। पश्चिमी देशों का यह अनुभव है कि स्थायी सुख-शान्ति मात्र भौतिक साधनों से प्राप्त नहीं हो सकती। ये मानसिक तनाव को शान्त नहीं कर पाते। इसीलिये वहाँ अनेक बीमारियाँ बढ़ रही हैं। योग से ही मानसिक तनाव दूर होता है, मन को शान्ति मिलती है तथा शरीर और मस्तिष्क शक्तिशाली होता है। इसीलिये अनेक पश्चिमी लोग भारत में योग सीखने आते हैं।

भारत में योग के चार प्रकार प्रचलित हैं : भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग और राजयोग। इनमें क्रमशः समर्पण, आत्मनिरीक्षण, अनासक्ति एवं मनोनियंत्रण का प्राधान्य रहता है। इनमें राजयोग सबसे सहज माना जाता है। पतंजल का योग भी राजयोग माना जाता है। ब्रह्मकुमारियों का योग भी राजयोग माना जाता है। वस्तुतः योग के वे सभी रूप राजयोग माने जाते हैं जो सहज हों, जिसे सामान्य जन और राजजन भी कर सके, एवं जिसमें आसान एवं हठक्रियाओं का बाहुल्य एवं प्राधान्य न हो। राजयोग में 'मन जीते जगत् जीते' की उक्ति चरितार्थ होती है। इस योग के अभ्यास से उत्तर जन्म में राज एवं देव पद प्राप्त होता है। मानव तन्त्र में बुद्धि को राजा कहते हैं। वह मन रूपी मंत्री व कर्मेन्द्रिय रूपी प्रजा को नियंत्रित करती है, अतः इसे बुद्धियोग भी कहते है। गीता में कृष्ण ने कहा है कि उन्होंने यही योग ब्रह्मा को सिखाया। ब्रह्मा ने इसे मनु को सिखाया और मनु ने इक्ष्वाकुवंशियों को सिखाया। इस प्रकार राजयोग अत्यंत ही महत्पूर्ण तंत्र है जो मानव को सुखी बनाने में सहायक है। वस्तुतः मुझे यह खेद की बात लगती है कि वर्तमान में भारत के अधिकांश योगाश्रमों में अनेक प्रकार के हठयोग अधिक सिखाये जाते हैं। इससे शरीर को तो अवश्य लाभ होता है, परन्तु इनसे उच्चतर आत्मिक शक्तियों को जगाने में पूर्ण सफलता नहीं मिलती। आधुनिक चिकित्सकों का भी कहना है कि मनुष्य के अस्सी प्रतिशत रोग मानसिक तनाव के कारण होते हैं। जब तक हमारा मन नहीं ठीक होता, तब तक हमारा शरीर भी स्वस्थ नहीं रह सकता। अतः मन को स्वस्थ और निर्विकार बनाने के लिये राजयोग ही सर्वोत्तम माना जाता है। बुद्धियोग, सन्यासयोग, समत्वयोग तथा पुरुषोत्तम योग आदि विविध नाम इसी पद्धति के विविध पहलू हैं। अन्तर-रहस्यों, आत्म-परमात्म रहस्यों के भेदक होने से इसे रहस्ययोग भी कहा जाता है।

योग के सभी प्रकारों में 'योग' शब्द महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ जोड़ना, मिलन, मिलाना या मिलाप होता है। आध्यात्मिक अर्थ में योग शब्द से आत्मा और परयात्मा के मिलन का बोध होता है। शरीर तंत्र के चक्रों के अर्थ में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलाधार और आज्ञा चक्र का मिलन एवं समायोजन इसका अर्थ है। नाड़ियों के रूप में इड़ा, विड़ा और पिंगला नाड़ियों का सन्तुलित समायोजन इसका अर्थ है। जो लोग चित्तवृत्ति निरोध को योग मानते हैं (पतंजल), उन्हें चित्त की वृत्तियों की चंचलता को रोक कर उन्हें परमात्मा की ओर एकाग्र करने की प्रक्रिया को अपनी योग परिभाषा में सम्मिलित करना चाहिये। अतः इस मान्यता के आधार पर योग के निम्न सोद्देश्य अर्थ हो जाते हैं :

(i) आत्मा और परमात्मा के विषय में ज्ञान और चेतना के माध्यम से एकाग्रता का अभ्यास करना।
(ii) परमात्मा की लगन लगाकर एकाग्रता का अभ्यास करना।
(iii) परमात्मा के प्रति समर्पण भाव या तन्मयता जगाना।
(iv) मन, वचन एवं शरीर को आत्मिक शक्ति संपन्न बनाना।
(v) परमात्मा के उपदेशों पर ध्यान करना व शक्तियों का विकास करना।

इन लक्षणों से राजयोग का एक अति सरल अर्थ भी प्रतिफलित किया गया है। मिलन की मधुरता स्मृतिपूर्वक होती है। स्मृति मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। मनुष्य सदैव किसी न किसी वस्तु, व्यक्ति या परमात्मा के बारे में सोचता रहता है। यह स्पष्ट है जिसके विषय में सोचा जा रहा है, उसकी स्मृति आती है। यह मिलन का ही एक रूप है। जब परमात्मा की स्मृति (या उसके विषय में चेतना जागती है) आती है, तब वह योग का रूप लेती है।

सामान्यतः स्मृति तीन प्रकार की होती हैं—आने वाली, करने वाली और सताने वाली। **आने वाली स्मृति** विशेष गुणों या कर्तव्यों के आधार पर आती है। उदाहरणार्थ, किसी ने हमारे ऊपर उपकार किया या कोई गुणी व्यक्ति है तो गुण या उपकार की चर्चा पर उसकी स्मृति आयेगी ही। **करने वाली स्मृति** स्वार्थ विशेष के आधार पर होती है। उदाहरणार्थ किसी को कोई कार्य अच्छी तरह करना आता है। यदि हमें कार्य करना हो तो उसकी सहायता पाने के लिये उसकी स्मृति आती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यदि अमुक व्यक्ति न होगा, तो कार्य ठीक से न हो पायेगा। **सताने वाली स्मृति** निकट संबंधियों, हितैषियों या मित्रों के कारण होती है। बच्चे की मृत्यु पर मां-बाप को दुख होना स्वाभाविक है, पर समय-समय पर उसकी याद एक विशिष्ट अनुभूति के रूप में सताया करती है। ये सब सांसारिक स्मृतियां हैं। योग आध्यात्मिक स्मृति का नाम है। उस स्मृति को समाने वाली स्मृति कहते हैं। उसके स्मरण से समताभाव जागृत होता है। जिस प्रकार बिजली के दो तारों को जब आपस में जोड़ा जाता है, तब उसके ऊपरी रबर-कोट को दूर कर जोड़ने पर ही विद्युत शक्ति प्रवाहित होती है, उसी प्रकार देह रूप रबर को दूर या विस्मृत किये बिना हमें आत्मशक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। आत्मा या परमात्मा से संपर्क करने के लिये स्थूल तार की आवश्यकता नहीं होती, समता का अदृश्य तार ही इसके लिये आवश्यक है। ऊंच-नीच की भावना योग प्रक्रिया के विरुद्ध है।

राजयोग की प्रक्रिया

राजयोग में मन को एकाग्र कर परमात्मा की ओर अभिमुख किया जाता है। इसमें यह माना जाता है कि यह संसार परमपिता परमात्मा ने बनाया है, वह अणु ज्योतिर्मय विन्दु रूप है, ब्रह्मलोकवासी है। उसी का मनन और प्रणिधान करने से आनन्द की प्राप्ति होती है। इसके लिये प्रारम्भिक अभ्यास के रूप में यह निश्चित रूप से स्वीकार करना होता है कि हमारा शरीर और आत्मा भिन्न-भिन्न है। शरीर की ओर अनासक्तता तथा आत्मा अभिमुखता या ज्योतिर्विन्दु आत्माभिमुखता का अभ्यास ही राजयोग है। योगाभ्यास के लिये संकल्प शक्ति या दृढ़ इच्छाशक्ति अनिवार्य है। इसके बिना चित्तवृत्तियों का निरोध और अन्तर्मुखता नहीं आ सकती। सर्वप्रथम निम्न छह बातों का निश्चय और मनन योगाभ्यास के लिये परम आवश्यक है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) सच्चा सुख विषय-विकारों वाले सांसारिक जीवन में नहीं होता। इसलिये भोगी जीवन को छोड़ने के लिये पुरुषार्थ करना है।

(२) देह-अभिमान के स्थान पर आत्म-अभिमान की प्रमुखता है। नास्तिक लोग परमात्मा को नहीं मानते, अतः उन्हें योग से पूर्ण लाभ नहीं मिल पाता।

(३) हमारी आत्मा का धर्म पवित्रता और शान्ति है। इससे मनुष्य को इन दैवी गुणों को प्राप्ति का पुरुषार्थ करना है। इसके लिये परमात्मा की भक्ति, बल एवं समर्पित भावना का अभ्यास किया जाता है।

(४) संसार में परमात्मा को कल्याणकारी स्वरूप का प्रतिनिधि मानकर उसकी ओर ध्यान लगाने में ही जीवन की सार्थकता है।

(५) कर्मवाद और पुनर्जन्मवाद सत्य हैं। इनमें आस्था अनिवार्य है। इस आधार पर संसार को नाटक के परिवर्तनशील दृश्यों के समान मानना चाहिये। योगी होने के लिये यह नियतिवादी और परमात्माभिमुखी वृत्ति लाभकारी होती है।

(६) संसार की परिवर्तनीयता एवं क्षणभंगुरता में अटूट विश्वास होना चाहिये। यह परमात्मा के प्रति अभिमुखता को प्रेरित करता है। निश्चयात्मक वृत्ति के विकसित होने पर (१) अनासक्त वृत्ति या समर्पणमयता (२) बुद्धि संतुलन एवं परमात्म-गुण-संस्मरण (३) आहार शुद्धि (४) सरलता एवं समान बुद्धि एवं (५) ब्रह्मचर्य का अभ्यास, योग प्रक्रिया और उसके लाभों को सबल बनाता है। वस्तुतः इन वृत्तियों के बिना योगाभ्यास सम्भव ही नहीं है। इन गुणों के विकास के लिये सत्संग या गुरु-संग बड़ा सहायक होता है।

राजयोग के अभ्यास के लिये कोई कठिन क्रिया, आसन या प्राणायामादि करने की आवश्यकता नहीं है। इसके लिये तो परमात्मा का स्मरण, उसके प्रति भक्तिभाव और उसके गुणों का चिन्तन ही आवश्यक है। इसके लिये लोकोत्तर स्थिति के प्रति मन को लगाना पड़ेगा। दिन-रात में सात बार तक १५-१५ मिनट के लिये मंत्र, माला या जप आदि का अभ्यास कर साधना करनी पड़ती है। 'मरजीवा' वृत्ति (देहाभिमान छोड़कर आत्मवृत्ति) तथा अतीत को भूलाने का अभ्यास करना पड़ता है।

योगभ्यास के लिये सुखदायी आसन होना चाहिये। किंचित् एकान्त स्थान होना चाहिये। यह वन या बसति—कहीं भी हो सकता है। अभ्यास के समय नेत्र बन्द रहें या खुले रहें, कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसके बाद आत्मा या परमात्मा के गुणों का मनन या विचार करना चाहिये। इन विचारों से तन्मयता, स्मृति की एकतानता तथा तल्लीनता उत्पन्न होगी। इस अभ्यास के समय वर्तमान चंचल मनोदशाओं के कारण अनेक संकल्प विकल्प भी मन में आते रहते हैं। अपनी संकल्पशक्ति से इनकी उपेक्षा करनी चाहिये। देह के प्रति अनासक्ति भाव जागृत होने पर ही योगशक्ति प्रकट होती है। योगाभ्यास से अशुद्ध संकल्प दूर होते हैं, दिनचर्या सुधर जाती हैं। इससे आठ प्रकार की शक्तियां प्राप्त होती हैं :—(i) निर्णय शक्ति (ii) परीक्षा शक्ति (iii) समेटने की शक्ति (iv) सामना करने की शक्ति (v) सहनशक्ति (vi) संकोच-विस्तार शक्ति (vii) समत्व शक्ति तथा (viii) समन्वय एवं सहयोग शक्ति। इन शक्तियों को ही सिद्धि, क्षमता या योग्यता कहते हैं। ये शक्तियां मनुष्य की महानता की सूचक हैं। ये ही आत्मा के पूर्णविकास की सूचक हैं। इनका रूप भौतिक एवं आध्यात्मिक-दोनों प्रकार का होता है। ये शक्तियाँ संसार को सुखशान्तिमय बनाने के लिये आवश्यक है। प्रारम्भिक योगाभ्यास लक्ष्य केन्द्रित (नासिकाग्र, नाभिकमल) होता है पर अन्तर्मुखता बढ़ने पर वह आत्म-केन्द्रित हो जाता है। तब ये वाह्य शरीर केन्द्र अनुपयोगी हो जाते हैं। योगाभ्यास की प्रगति के साथ व्यक्ति की मानसिक अवस्थाओं में उत्तरोत्तर परिवर्तन होता है। इन अवस्थाओं के नाम क्रमशः—(i) लग्न या व्युत्थान, (ii) मनन या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाधि प्रारम्भ, (iii) मग्न, ऋतंभरा बुद्धि या एकाग्र, (iv) विन्दुकित या निरोध हैं। ये अवस्थायें पतंजल योग के समान ही होती हैं। इन अवस्थाओं के अभ्यास से अन्तः प्रकाश और अन्तः शक्ति जागृत होती है।

पतंजल योग और सहज राजयोग

जब भी योग का नाम लेते हैं, तो सामान्यतः इससे प्राचीन पतंजल योग का ही अर्थ लिया जाता है। यह राजयोग है। ब्रह्मकुमारियों की योग पद्धति भी राजयोग है, पर इसे सहज या सरल राजयोग कहते हैं। यह पतंजल के अष्टांगी योग की तुलना में सरल है। पतंजल योग में उद्गम, केन्द्र विन्दु, प्रेरणास्रोत एवं प्राप्य ईश्वर या परमात्मा नहीं है, उसमें ईश्वर को गौण स्थान प्राप्त है : इसके विपर्यास में, सहज राजयोग तो परमात्म-केन्द्रित ही है। इसमें भक्तिभाव की प्रधानता है। सहज राजयोग पतंजल के अष्टांग योग से सरल है। इसमें आसन और प्राणायामादि शरीर क्रियाओं का (जिन्हें दुर्बल या व्यस्त लोग नहीं कर सकते) महत्त्व नगण्य है। इसमें यम, नियम, परमात्म स्मृति एवं आत्मस्थिति, धारणा, ध्यान एवं समाधि प्रमुख हैं। सहज राजयोग के अनुसार, आसन और प्राणायाम आदि क्रियायें चित्तवृत्ति को शरीराभिमुखी बनाती हैं। अभ्यास और वैराग्य की दशा में जब ये वृत्तियाँ नियन्त्रित हो सकती है, तब इन आसनादि की उपयोगिता स्वयं अस्पष्ट हो जाती है। वैसे भी आसनादि योग के बहिरंग साधन है। सहज राजयोग की मग्नावस्था पतंजल योग की समाधि अवस्था से भिन्न प्रतीत होती है क्योंकि उसका उद्देश्य चित्तवृत्ति निरोध से प्राप्त स्वरूप शून्यता एवं मुक्ति है, पर यहाँ चित्तवृत्ति निरोध के माध्यम से परमात्मास्मृति एवं संयोग ही योग का मुख्य लक्ष्य है। पतंजल योग में स्मृति भी एक चित्तवृत्ति है, उसका भी निरोध आवश्यक है। वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता समाधियों में आनन्द का तीसरा और गौण स्थान है, स्वरूपशून्यता की स्थिति में उसके प्रति भी वैराग्यवृत्ति होती है। सहज राजयोग की मान्यता इसके भिन्न है। उसका लक्ष्य ही परमात्म स्मृति एवं आनन्दानुभूति है। पतंजल की समाधि मानसिक अवधान की पराकाष्ठा है जब कि सहज राजयोग परमात्म स्वरूप के प्रति तादात्म्य है। पतंजल की चारों प्रकार की समाधियों के लक्षण राजयोग के उद्देश्य से मेल नहीं खाते। ये मानसिक अन्तर्मुखता को अधिक महत्व देती हैं जब कि सहज राजयोग ईश्वर-प्रणिधान मात्र पर महत्व देता है। सहज राजयोगी इसके बिना योग का कोई अन्य प्रयोजन नहीं मानता।

●

श्वास अध्यात्म का यात्रापथ है

श्वास वह यात्री है जो बाहर की यात्रा भी करता है और भीतर की यात्रा भी करता है। यह वह दीप है जो बाहर भी प्रकाशित करता है और भीतर को भी प्रकाशित करता है। यदि हम भीतर की यात्रा करना चाहें, तो हमारे पास एकमात्र उपाय है कि हम मन को श्वास के रथ पर चढ़ा दें और उसके साथ भीतर चले जावें। हमारी अन्तर्यात्रा प्रारम्भ हो जावेगी, हम आध्यात्मिक बन जावेंगे। हमारा मन अचंचल हो जावेगा।

श्वास का सम्बन्ध है प्राण से, प्राण का सम्बन्ध है पर्याप्ति से अर्थात् सूक्ष्म प्राण से और पर्याप्ति का सम्बन्ध है कर्मशरीर से। अतः कर्मशरीर श्वास की जड़ है। यह प्राण हमें श्वास के माध्यम से आकाश मंडल से प्राप्त होता है। श्वास हमारी अध्यात्म साधना की नींव का पत्थर है। श्वास प्रेक्षा हमारी अध्यात्म शक्ति जागरण का पहला चरण है।

—युवाचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org